भगवान महावीर का साधना मार्ग

-दुलीचन्द जैन 'साहित्यरत्न'

श्रमण भगवान महावीर ने साढ़े बारह वर्षों तक आत्मा की दिव्य साधना की। सुख, समृद्धि व वैभवगत आसक्तियों को त्याग कर अकिंचन बन वे सत्य की साधना में निरंतर लीन रहे। उनका दिव्य एवं भव्य संयमी जीवन साधनामय जीवन का उत्कृष्टतम उदाहरण है। इस जीवन का प्रत्येक पृष्ठ समता, सहिष्णुता, परदुःखकातरता, त्याग, तपस्या, ध्यान और अभय की भावना से ओतप्रोत था। उन्होंने यह दीर्घ साधना-काल मौन आत्म-चितंन, आत्म-पर्यालोचन, उग्र ध्यान एवं उत्कट संयम की आराधना में व्यतीत किया।

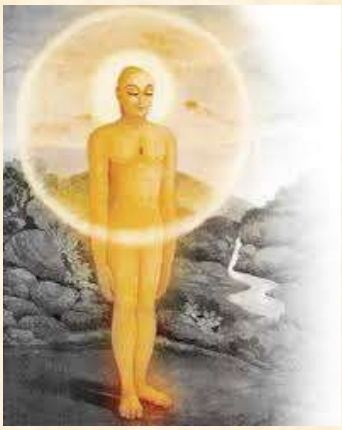

इस साधना-काल में उन पर अनेक विपत्तियाँ एवं उपसर्ग आये। प्राकृतिक, मानवीय व दैवी संकटों के प्राणघातक तूफान प्रलयकाल की तरह घिर घिर कर आये पर वर्द्धमान ने अदम्य साहस, अपराजेय संकल्प व आत्म-बल के सहारे उनका डट कर मुकाबला किया। उन्होंने अपूर्व कष्ट-सहिष्णुता, क्षमा और तितिक्षा का आदर्श उपस्थित किया।

त्याग और तपस्या की साधना का इस प्रकार का आदर्श मानव-समाज में और मिलना दुर्लभ है। उनके संबंध में शास्त्रों में कहा है :- 'उग्गं व तवोकम्मं विसेसओ वद्धमाणस्स' आ. नि. २४० अर्थात् अन्य तीर्थंकारों की अपेक्षा वर्द्धमान का तप विशेष उग्र था।

उनके साधना-काल का रोमांचकारी वर्णन आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध के नवम अध्ययन में मिलता है। गणधर सुधर्मा स्वामी ने उनकी साढ़े बारह वर्ष की साधनाचर्या का बडा सजीव, रसप्रद और हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर उनकी कष्ट-सहिष्णुता, अडिग ब्रह्मचर्य-साधना, अहिंसा और त्याग के कठिन नियमों का परिपालन, अनुकूल-प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में समभाव, निःस्पृहता, शारीरिक अनासक्ति, विचल ध्यान योग और अन्तर्लीनता मुखरित है। उस साधनाचर्या का कुछ अंश यहाँ पर प्रस्तुत है।

निद्रा-विजय

श्रमण वर्द्धमान ने कभी पूरी नींद नहीं ली। जब अधिक नींद सताती तो वे शीत में बाहर निकल थोड़ा घूमकर निद्रा दूर करते। हमेशा सजग-जागृत रहने की चेष्टा करते। वे प्रहर-प्रहर किसी लक्ष्य पर आंखे टिका कर ध्यान करते थे।

अनासक्ति

वे गृहस्थों के साथ कोई संसर्ग नहीं रखते थे, न ही गृहस्थों के कार्यो में, गान, नृत्य या संगीत आदि में कोई रुचि रखते थे। ध्यानावस्था में कुछ पूछने पर भी उत्तर नहीं देते थे। वे स्त्री-कथा, भक्त-कथा, राज-कथा तथा देश-कथा में कोई रुचि नहीं लेते थे। यदि शून्य स्थानों में कोई उनसे पूछता कि आप कौन है तो वे संक्षिप्त उत्तर देते - 'अहमंसि ति भिक्खू' अर्थात् मैं भिक्षु हूँ। न सहन किये जा सके, ऐसे कटु व्यग्ंय वचन, निंदा व तिरस्कार का भी वे उत्तर नहीं देते थे तथा मौन रहते थे। वे हमेशा निर्विकार, कषाय-रहित, निर्मल ध्यान और आत्म-चिंतन में समय बिताते थे।

अहिंसा एवं तितिक्षा

भगवान ने पल-पल अनुपम अहिंसा और तितिक्षा की साधना की। भिक्षा में जाते हुए अगर कबूतर आदि पक्षी अनाज चुगते दिखाई देते तो वर्द्धमान दूर हट जाते ताकि उनको विघ्न न पहुँचे। यदि वे किसी घर के बाहर किसी ब्राह्मण, श्रमण या भिक्षुक को याचना करते देखते, तो उस घर में नहीं जाते थे ताकि उनकी आजीविका में बाधा नहीं पहुँचे। किसी के मन में द्वेष-भाव उत्पन्न होने का वे अवसर ही नहीं देते थे।

दुर्गम विहार-चर्या

तीर्थंकर स्वयंसम्बुद्ध होते हैं। वे अपने स्वयं के पुरुषार्थ से आत्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर महावीर के भी किसी महान सत्पुरुष से प्रत्यक्ष साक्षात्कार की कोई घटना नहीं मिलती।

वर्द्धमान को कभी कभी किन्हीं स्थानों पर ठहरने की व ध्यान करने की भी अनुमति नहीं मिलती थी, किन्ही किन्ही गाँवों में वे जाते तो उन्हें तुरंत वापस जाने को कह दिया जाता था। अतः उन्होंने निम्नलिखित नियम लिये :-

भविष्य में अप्रीतिकारक स्थान पर नहीं रहूँगा।
ध्यान में सतत् लीन रहूँगा।
सदा मौन रखूँगा।
हाथ से ग्रहण करके भोजन करूँगा।
गृहस्थ का विनय नहीं करूँगा।
साधनाकाल में उनके जीवन में जो उपसर्ग आए, उनका कुछ विवरण यहाँ प्रस्तुत है :-

अभय की उत्कृष्ट साधना

श्रमण वर्द्धमान विहार करते हुए एक छोटे से गाँव 'अस्थिक ग्राम' में आये। वहाँ आसपास का वातावरण बडा ही भयावह एवं हृदय को कंपा देने वाला था। गाँव के बाहर शूलपाणि यक्ष का मंदिर था। एकांत स्थान देखकर भगवान ने गाँव वालों से वहाँ ठहरने की अनुमति मांगी। महावीर की दिव्य, सौम्य आकृति को देखकर लोगों के हृदय द्रवित हो गए। उन्होंने कहा-देव। आप अन्यत्र ठहर जायें। यहाँ एक यक्ष रहता है जो बड़ा क्रूर है। रात में किसी को यहाँ ठहरने नहीं देता। उसे भयंकर यातना देकर मार डालता है।' महावीर यह सुनकर भी डरे नहीं और उन्होंने वहीं ठहरने का संकल्प किया तथा पुनः आज्ञा मांगी।

तब ग्रामवासियों ने महावीर को यक्ष से संबन्धित निम्नाकिंत घटना सुनाई :-

'देव! कुछ वर्षो पूर्व की घटना है। यहाँ से धनदत्त नामक व्यापारी पाँच सौ गाडियों में सामान लेकर गुजर रहा था। वर्षा के कारण उसकी गाड़ियाँ यहाँ पर कीचड़ में फँस गई। बैल उनको खींच नहीं सके। पर उसके पास सफेद हाथी की तरह बड़ा ही बलवान एवं पुष्ट कंधोवाला एक बैल था। उस एक ही बैल ने धीरे पाँच सौ गाडियों को कीचड़ से निकाल कर बाहर कर दिया। पर अत्यधिक परिश्रम के कारण वह बैल थक कर चूर हो गया तथा भूमि पर गिर पड़ा। व्यापारी ने अनेक प्रयत्न किये पर बैल खड़ा नहीं हो सका। तब व्यापारी ने गाँव वालों को एक बड़ी धनराशि दी तथा बैल की सेवा - परिचर्या का भार उन्हें सोंपकर वह आगे रवाना हो गया। गाँव वाले उस व्यापारी का सारा धन हजम कर गये तथा उन्होंने बैल की कोई सेवा - शुश्रूषा नहीं की, न ही उसे खाने को कुछ दिया। भूखे-प्यासे संतप्त बैल ने एक दिन अपने प्राण छोड़ दिये । वही बैल मर कर शूलपाणि यक्ष बना अब गाँव वालों से अपने प्रति किये गए दुर्व्यवहार का बदला ले रहा है। उसने घर घर में पीड़ा, त्रास, तथा भय का आतंक फैला दिया है तथा सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया है।

महावीर उनकी कथा सुनकर भी निर्भय बने रहे तथा गाँव वालों से अनुमति लेकर वही एकांत स्थान देखकर ध्यान मग्न हो गए। अर्द्ध रात्रि को यक्ष उस स्थान पर आया तथा एक मनुष्य

को निर्भय खड़ा देखकर आग बबूला हो गया। उसने भयंकर अट्टहास किया लेकिन महावीर जरा भी विचलित नहीं हुए। वह यक्ष प्रलयकाल के तूफान की तरह हुंकार करने लगा। वह उनको तरह तरह से यातना देने लगा। कभी बिच्छु की तरह जहरीले डंक मारता तो कभी शिकारी कुत्तों की तरह उनका मांस नोच डालता। लेकिन महावीर फिर भी स्थिर और अडोल रहे। आखिर उसकी धृष्टता दूर हुई। उसकी दुष्टता महावीर की साधुता से भिड़ कर, टकराकर निस्तेज हो गई। वह हतप्रभ हो गया तथा उसे अपने आप से घृणा हो गई। उसने प्रभु महावीर के समक्ष क्षमा मांगी। महावीर ने उसे अभय-दान दिया। प्रातः काल जब ग्रामवासी आए तो वहाँ पर बड़ा शांत वातावरण था। सभी श्रमण महावीर की उपासना में निमग्न हो गए। पूरा गाँव हर्ष से श्रमण महावीर की विजय-गाथा गाने लगा। (त्रिषष्टि १०/३)

अनुपम चिंतन, अनुपम तप, अनुपम ध्यान, तितिक्षा, धैर्य आदि के साथ महावीर ने अपना साढ़े बाहर वर्षों का साधना-काल व्यतीत किया। उनकी उग्र तपस्या तथा कष्ट-साहिष्णुता के कारण ही लोगों ने उन्हें श्रमण महावीर कहना प्रारंभ किया।

साधना काल के उपसर्ग

श्रमण वर्द्धमान ने अपने दीर्घ साधना-काल में सारा समय आत्म-चिंतन तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के उद्यम में बिताया । उन्होंने इस साधना काल में उपदेश नहीं दिया, धर्म प्रचार नही किया, न शिष्य मुंडित किये तथा न ही उपासक बनाये। उन्होंने ध्यान की अतल गहराइयों में डूबकर जगत और जीवन के प्रत्येक प्रश्न पर गंभीरता से चिंतन किया।

वर्द्धमान अपने युग के सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाशाली एवं मेधावी पुरुष थे। यह उनकी दीर्घ साधना का ही फल था। शास्त्रों में उन्हें मेधावी (मेहावी), आशुप्रज्ञ (आसुपन्ने) तथो दीर्घप्रज्ञ (दीहपन्ने) बार बार कहा गया है। उनके नाम के साथ निम्न विशेषण भी मिलते है :-

दक्खे	- वे बड़े दक्ष व व्यवहार कुशल थे।
दक्खपइण्णे	- वे संकल्प एवं प्रतिज्ञा में दृढ़ थे।
भददये	- वे सरल-भद्र प्रकृति वाले थे।
विणीये	- वे विनीत थे।

अहिंसा की अमृत वर्षा

श्रमण महावीर सुवर्णबालुका नदी के पास कनकखल नामक आश्रम पाद से गुजर रहे थे। उन्होंने पीछे से आते हुए कुछ ग्वालों की भयाक्रांत पुकार सुनी। उन्होंने कहा - देव। आप रुक जाये, आगे न बढे, इस रास्ते पर एक भयावह काला नाग रहता है, जिसने अपनी विष-ज्वाला से अगणित राहगीरों को भस्मसात कर डाला है। हजारों पशु-पक्षी व पेड़-पौधे उसकी विषाग्नि से जलकर राख हो गए है। महावीर दो क्षण रुक गए। उन्होंने अपना अभयसूचक हाथ ऊपर उठाया, जैसे संकेत दे रहे हो कि तुम घबराओं नहीं। गाँववालों ने उन्हें पुनः समझाया पर महावीर धीर-गंभीर गति से आगे बढ़ते गये। उस नाग की बांबी के पास एक प्राचीन देवालय था, वे वहीं पहुँचकर ध्यान मग्न हो गए।

जंगल में घूमता हुआ वह सर्प अपनी बांबी के पास पहुँचा तथा वहाँ देवालय में एक मनुष्य को निश्चल खड़ा देख आश्चर्य - चकित हो गया। साथ ही उसे भयंकर क्रोध भी आया। उसने अपनी विषमयी तीव्र दृष्टि से महावीर की ओर देखा, अग्निपिण्ड से जैसे ज्वालाएँ निकलती है वैसे ही उसकी आँखों से तीव्र विषमयी ज्वालाएँ निकलने लगी। साधारण मनुष्य तो उसने जलकर खाक हो जाता पर महावीर पर उनका कोई प्रभाव नहीं पडा। उसने बार-बार उन पर प्रहार किया पर महावीर अविचल ध्यान में निमग्न रहे। आखिर उसने एक तीव्र दंश उनके अंगूठे पर मारा। लेकिन यह भी निष्फल गया। उल्टे वहाँ से दूध की धारा बहने लगी।

महावीर का अब ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होंने चंडकौशिक को उद्बोधन देते हुए कहा - चंडकौशिक समझो। समझो। अब शांत हो जाओ। अपना क्रोध शान्त करो। महावीर के अमृत-वचन सुनकर नागराज का क्रोध पानी पानी हो गया। वह विचारों में गहरा उतरा तो उसे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। तीव्र क्रोध के कारणे उसने पूर्व जन्मों में कितने-कितने कष्ट उठाये, वह उसे स्मरण हो आया। वह शांत होकर बारंबार उनके चरणों में लिपटकर क्षमा मांगने लगा। प्रातः काल गाँव वालों ने यह दृश्य देखा तो वे आश्चर्यचकित हो उठे तथा प्रभु का गुणगान करने लगे।

अहिंसा, अभय, मैत्री का यह एक ज्वलंत उदाहरण है (त्रिषष्टि १०/३)

साधना की अग्नि परीक्षा

साधना का ग्यारहवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। श्रमण महावीर ने श्रावस्ती में वर्षावास किया। यहाँ पर ध्यान एवं योग की अनेक प्रक्रियाओं के द्वारा उन्होंने साधना को और भी प्रखर बनाया। तीन दिन का उपवास करके श्रमण महावीर पेढ़ाल उद्यान में कायोत्सर्ग कर खड़े थे तथा उत्कृष्ट ध्यान-प्रतिमा में लीन थे। उनके तन मन व प्राण अकंप तथा स्थिर थे। उसी समय एक देव संगम उनकी अग्नि-परीक्षा लेने आ पहुँचा। एक ही रात्रि में उस देव ने श्रमण महावीर को इतनी यातनाएँ दी; इतने प्राणघातक कष्ट दिये कि वज्र-हृदय भी दहल जाये किंतु परमयोगी महावीर का एक रोम भी प्रकम्पिक नहीं हुआ।

महावीर ध्यान की सर्वतोभद्र प्रतिमा में लीन थे। अचानक सांय सांय की आवाज से दिशाएँ काँप उठी। भयंकर धूल भरी आंधी से महावीर के शरीर पर मिट्टी के ढ़ेर जम गए। पर महावीर से अपने निश्चय के अनुसार आँखों की पलकें भी बंद नहीं की।

आँधी शांत हुई कि तीक्ष्ण मुख वाली चींटियाँ चारों और से महावीर के शरीर को काटने लगी। तन छलनी सा हो गया पर मन वज्र सा दृढ रहा। तभी मच्छरों का समूह महावीर के शरीर को काट काटकर उनका रक्त चूसने लगा। फिर दीमके महावीर के पूरे शरीर पर लिपट गई तथा भयंकर दंश मारकर काटने लगी। पर महावीर विचलित नहीं हुए।

फिर बिच्छुओं द्वारा तीव्र दंश प्रहार किया जाना, नेवलों द्वारा मांस नोचा जाना, विषधर सर्पों द्वारा स्थान स्थान पर डंक मारा जाना तथा तीखे दाँत वाले चूहों द्वारा उनके शरीर को काटा जाना आदि प्रारंभ हुए पर वे सर्वथा अकंपित, अवचिलित बने रहे।

इसी प्रकार के बीस घोर उपसर्ग महावीर पर आये पर संकल्प के धनी महावीर अपनी स्थिति से, अपनी नासाग्र दृष्टि से तिल भर भी डिगे नहीं। आखिर दुष्ट संगम का अहंकार चूर हुआ और उसने महावीर से क्षमा मांगी। प्रातःकाल महावीर की ध्यान साधना पूर्ण हुई और वे प्रसन्न-मन आगे विहार को बढ़े। आवश्यक निर्युक्ति गाथा ३९२।

कानों में कील :

साधना-काल के तेरहवे वर्ष में श्रमण महावीर छम्माणि गाँव के बाहर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े थे। उसी समय खेती में काम करता हुआ एक ग्वाला वहाँ अपने बैल लेकर आया। श्रमण को देखकर बोला-देव! जरा मेरे बैलों की देखभाल करना, मैं थोड़ी देर में आता हूँ। यह कहकर वह वहाँ से गाँव चला गया।

थोड़ी देर में वह वापस आया तो उसे बैल नहीं मिले। वे चरते चरते कही दूर निकल गए थे। उसने महावीर से पूछा – 'देव! मेरे बैल कहाँ गये?' महावीर तो मौन-ध्यान में तल्लीन थे। उत्तर कहाँ से देते। इस पर वह ग्वाला आग बबूला हो गया। उसने फिर पूछा-'ऐ ढोंगी बाबा। तुझे कुछ सुनाई देता है या नहीं?' महावीर से कोई उत्तर नहीं दिया। उसने कहा – 'अच्छा, मै तेरे कानों की चिकित्सा करता हूँ।' आवेश में मूढ़ ग्वाला जंगल में गया और वहाँ से किसी वृक्ष की दो पैनी लकडियाँ ली और महावीर के कानों में ठोक दी। उन्हें असह्य मरणान्तिक वेदना हुई पर उन्होंने उफ तक नहीं किया। वे महा-श्रमण तब भी ध्यान से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर वे मध्यमा नगरी पधारे तथा सिद्धार्थ वणिक के घर गोचरी ली। वणिक ने उनके कानों में कीलों को देखा तो वह दुःख से काँप उठा। उसने तुरंत खरक नामक वैद्य को बुलाया। उसने कानों से कीलें निकाली। भगवान को असह्य वेदना हुई। पर उनके घाव कुछ दिनों में भर गए।

साधक जीवन की यह मानों अंतिम वेदना थी, अंतिम कड़ी थी, जो अब समाप्त हो गई । (त्रिषष्टि २०/४)

सम्पर्क सूत्र :
Dulichand Jain, Chairman, Karuna International
70, T.T.K. Road, Alwarpet, Chennai - 600018. Cell : 9444047263